E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2025; 7(12): 211-215
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 22-09-2025
Accepted: 26-10-2025

संघ सेन सिंह
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजकीय महाविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

डॉ. विवेक पटेल
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजकीय महाविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
संघ सेन सिंह
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजकीय महाविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

समकालीन भारत में क्षेत्रवाद तथा राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति

संघ सेन सिंह, विवेक पटेल

DOI: https://www.doi.org/10.33545/26646021.2025.v7.i12c.796

सारांश
क्षेत्रवाद राज्यों के बीच राजनीतिक, सुरक्षा और आर्थिक सहयोग को बढ़ाने के लिए एक बहुपक्षीय संस्थागत प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया मुख्य रूप से विभिन्न राज्यों के बीच अधिकतम संपर्क और सहयोग सुनिश्चित करने के उद्देश्य से की जाती है। हालाँकि, यह राज्य की संप्रभुता और उसके अस्तित्व को बनाए रखते हुए, इसे पार करने की भी कोशिश करता है, इस प्रक्रिया में एक प्रमुख विरोधाभास यह है कि क्षेत्रवाद, एक ओर, राज्यों की भूमिका पर आधारित है लेकिन दूसरी ओर, यह ऐसे तंत्र विकसित करता है जो राज्य की प्रमुखता को कम कर सकते हैं। यह परस्पर विरोधाभास कुछ महत्वपूर्ण आयामों को उजागर करता है।
समय: ऐतिहासिक रूप से, क्षेत्रवाद की प्रक्रिया समय के साथ विकसित हुई है। यह आमतौर पर लंबे समय तक चलने वाली आर्थिक और राजनीतिक वार्ताओं के माध्यम से होता है, जिसमें राज्यों को अपनी संप्रभुता के कुछ हिस्सों को छोड़ने के लिए समझौते करने पड़ते हैं।
मजबूत राज्य: क्षेत्रवाद आमतौर पर उन मजबूत राज्यों से बढ़ता है जो पहले से ही अपनी संप्रभुता का सफलतापूर्वक लाभ उठा चुके होते हैं। ऐसे राज्य अधिक प्रभावी रूप से क्षेत्रवाद को अपना सकते हैं क्योंकि उनके पास ताकत और स्थिरता होती है।
नेतृत्व: मजबूत राज्य या प्रमुख नेता (हैजेमोनिक) क्षेत्रवाद को बढ़ावा देने वाले नियमों और मानदंडों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये नेता क्षेत्रीय ढांचे को आकार देने और सहयोग को मजबूत करने में प्रमुख होते हैं। इस प्रकार, क्षेत्रवाद एक जटिल प्रक्रिया है जो राज्यों के बीच सामूहिक सहयोग और आपसी निर्भरता को बढ़ावा देने की कोशिश करता है, जबकि राज्य की संप्रभुता को चुनौती देने वाले तंत्रों का भी निर्माण करता है।

कुटशब्दः क्षेत्रवाद, राष्ट्रवाद, संप्रभुता, राज्य स्वायत्तता, जातीय एवं सांस्कृतिक पहचान तथा अलगाववाद।

प्रस्तावना
क्षेत्रवाद को उपक्षेत्रीय निष्ठा और पहचान के रूप में समझा जा सकता है, जो विभिन्न जातीय, भाषायी, सांस्कृतिक और आर्थिक हितों के दावे पर आधारित होता है। इसे मुख्य रूप से केंद्रीकरण के दमनकारी रूपों के खिलाफ एक आंदोलन के रूप में भी देखा जाता है जैसा कि सेलिगमैन और जॉनसन ने परिभाषित किया है। थॉमस ओ. ह्यूग्लिन ने इसे "उप-राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मतभेदों, पहचानों और प्रतिबद्धताओं की दृढ़ता" के रूप में वर्णित किया है, जो क्षेत्रीयता और स्थानीयता को बढ़ावा देता है।
भारतीय संदर्भ में, क्षेत्रवाद विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह देश के भीतर विभिन्न समूहों द्वारा जातीय, भाषायी और आर्थिक हितों की रक्षा के लिए उठाए गए आंदोलनों को संदर्भित करता है। भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय चेतना उन लोगों की सांस्कृतिक, भाषायी और आर्थिक पहचान से जुड़ी होती है, जो किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं। इसलिए क्षेत्रवाद के कई रूप उभरते हैं, जैसे कि-

आर्थिक क्षेत्रवादः जब किसी क्षेत्र के लोग अपने आर्थिक संसाधनों की बेहतर हिस्सेदारी की मांग करते हैं।

सांस्कृतिक एवं भाषायी क्षेत्रवादः किसी क्षेत्र विशेष की भाषा और उसकी सांस्कृतिक पहचान की रक्षा और उसके प्रचार का आंदोलन, जिसके तहत वे अन्य भाषा एवं संस्कृति का प्रतिरोध करते हैं।

राजनीतिक क्षेत्रवाद: क्षेत्रीय दलों या नेताओं द्वारा राष्ट्रीय राजनीति मे उचित भागीदारी एवं केंद्रीय मुद्दों की बजाय अपने क्षेत्रीय मुद्दों पर जोर दिया जाता हैं।

उप-क्षेत्रीय आंदोलन: जब छोटे क्षेत्र या समुदाय बड़ी इकाइयों से अलग पहचान और अधिकार की मांग करते हैं। डॉ. इकबाल नारायण ने भारतीय संदर्भ में क्षेत्रवाद को एक जटिल और अस्पष्ट अवधारणा बताया है, जिसके दो पहलू होते हैं :

पहला सकारात्मक आयाम: यह किसी क्षेत्र विशेष के लोगों की आत्म-संतुष्टि और उनके अधिकारों की प्राप्ति का प्रतिनिधित्व करता है, जिससे वे अपनी सांस्कृतिक और क्षेत्रीय पहचान को संरक्षित कर सकते हैं।

दूसरा नकारात्मक आयाम: यह सापेक्ष अभाव की मानसिकता से उत्पन्न होता है, जहां क्षेत्रीय शिकायतें या असंतोष बड़े राजनीतिक या आर्थिक संदर्भ में अपनी अभिव्यक्ति नहीं पाते हैं। यह अक्सर संघर्ष या विभाजन का कारण बन सकता है, खासकर जब क्षेत्रीय समूहों को लगता है कि उन्हें राष्ट्रीय राजनीति में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला है।

इस प्रकार, भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद को एक ऐसी घटना के रूप में देखा जा सकता है, जो न केवल क्षेत्रीय पहचानों की रक्षा करता है बल्कि कई बार इसे राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती भी माना जाता है।

समकालीन भारत में क्षेत्रवाद की अभिव्यक्तियाँ विविध और जटिल हैं, जिन्हें पूरी तरह से समझना और व्यवस्थित करना चुनौतीपूर्ण है। भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयता कई रूपों में प्रकट होती है और इसका प्रमुख कारण विभिन्न समूहों की पहचान, सांस्कृतिक विशिष्टता और आर्थिक संसाधनों की प्राप्ति की मांग है। यह क्षेत्रीय आंदोलनों, जातीय संघर्षों और भाषायी विवादों के माध्यम से सामने आता है, जो पूरे देश में विभिन्न रूपों में देखे जा सकते हैं, क्षेत्रीयता की मुख्य अभिव्यक्तियाँ इस प्रकार हैं :

1. **उत्तर-दक्षिण विभाजन:** भारत के उत्तरी और दक्षिणी हिस्सों के बीच ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विभाजन अक्सर राजनीतिक और सामाजिक संघर्षों को जन्म देता है। भाषाई और आर्थिक असमानताएँ भी इस विभाजन को गहरा करती हैं।
2. **क्षेत्रीय दलों का विकास:** भारत में क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ है, जो अपने-अपने राज्यों के विशेष मुद्दों पर केंद्रित हैं। उदाहरण के लिए डीएमके, टीएमसी, शिवसेना और अकाली दल जैसे दल अपने राज्यों की पहचान और हितों की रक्षा के लिए खड़े हुए हैं। इन दलों ने राज्य और केंद्र के बीच सत्ता संतुलन को प्रभावित किया है।
3. **अधिक स्वायत्तता की मांग:** कुछ राज्य अधिक स्वायत्तता की मांग करते रहे हैं, जैसे कि पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु और पंजाब। इन मांगों का आधार अक्सर आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण, सांस्कृतिक संरक्षण और राजनीतिक स्वतंत्रता की इच्छा होती है।
4. **जातीय और क्षेत्रीय आंदोलन:** ये आंदोलन स्वायत्तता या अलगाव की मांग करते हैं, जो स्थानीय पहचान को संरक्षित करने और उसे बाहरी नियंत्रण से बचाने की इच्छा से प्रेरित होते हैं, जैसे- गोरखालैंड, नागालैंड, मिज़ोरम और खालिस्तान के आंदोलनों में जातीय और सांप्रदायिक पहचान के आधार पर संघर्ष हुए हैं।
5. **भाषायी आंदोलन:** भारत में भाषायी पहचान हमेशा से एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है। भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन 1950 के दशक में हुआ था लेकिन अभी भी कई क्षेत्रों में भाषायी पहचान के मुद्दे हावी हैं, जैसे- महाराष्ट्र में "धरती के पुत्र" आंदोलन।
6. **सीमावर्ती और जल विवाद:** राज्यों के बीच सीमावर्ती विवाद और नदी जल बंटवारे के मुद्दे भी क्षेत्रवाद को बढ़ावा देते हैं, जैसे- महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच बेलगाम का विवाद और कावेरी नदी के जल बंटवारे को लेकर तमिलनाडु और कर्नाटक के बीच संघर्ष।
7. **अलगाववादी आंदोलन:** तमिलनाडु, नागालैंड, मिज़ोरम और पंजाब में अलगाववादी आंदोलनों का इतिहास रहा है, जहाँ स्थानीय समुदायों ने अपने राज्य या क्षेत्र की स्वतंत्रता की मांग की है। यह अक्सर केंद्र सरकार की नीतियों के प्रति असंतोष और क्षेत्रीय पहचान के संरक्षण की इच्छा से प्रेरित होता है।
8. **अंतर-राज्यीय विवाद:** राज्यों के बीच सीमाओं और संसाधनों को लेकर विवाद अक्सर क्षेत्रीयता को और बढ़ावा देते हैं। जैसे- पंजाब और हरियाणा के बीच पानी और सीमा विवाद, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश के बीच सीमावर्ती क्षेत्रों को लेकर विवाद।

डॉ. सी. ए. पेरुमल के अनुसार, भारतीय क्षेत्रवाद चार प्रमुख रूपों में देखा गया है:

प्रथम- कुछ क्षेत्रों के लोगों द्वारा भारतीय संघ से अलग होने की मांग।

दूसरा- कुछ क्षेत्रों के लोगों द्वारा अलग राज्य की मांग।

तीसरा- कुछ केंद्रशासित प्रदेशों द्वारा पूर्ण राज्य का दर्जा पाने की मांग।

चौथा- अंतर-राज्यीय विवादों में समाधान की मांग।

रजनी कोठारी के अनुसार, ये क्षेत्रीय विद्रोह वास्तव में राष्ट्रीय संकटों के प्रति प्रतिक्रिया हैं। वे मौजूदा व्यवस्था की विफलता और इसके प्रति बढ़ते असंतोष को उजागर करते हैं। क्षेत्रीय आंदोलनों के मूल में पहचान की एक गहरी भावना होती है, जो क्षेत्रीय अभिजात वर्ग द्वारा सत्ता और संसाधनों पर नियंत्रण की होड़ में भाषा, संस्कृति और आर्थिक उन्नति के आधार पर इस्तेमाल की जाती है। इस प्रकार, भारत में क्षेत्रवाद एक व्यापक और जटिल राजनीतिक घटना है, जो न केवल देश की संघीय संरचना को चुनौती देती है बल्कि क्षेत्रीय पहचान और सांस्कृतिक विशिष्टता को भी नए सिरे से परिभाषित करती है।

क्षेत्रवाद बनाम राष्ट्रवाद : क्षेत्रवाद और राष्ट्रीय एकता के बीच तनाव, विशेष रूप से भारत जैसे बड़े और विविधतापूर्ण देश में एक

जटिल और विवादास्पद मुद्दा है। इस पर दो विरोधी दृष्टिकोण सामने आते हैं, क्षेत्रवादियों और राष्ट्रवादियों के बीच:-

क्षेत्रवाद का वैधता पक्ष : जो लोग मानते हैं कि क्षेत्रवाद कुछ हद तक वैध है, उनका तर्क है कि भारत जैसे विशाल और सांस्कृतिक रूप से विविध देश में, क्षेत्रीय पहचान स्वाभाविक रूप से उभरती है। क्षेत्रीय आंदोलन, जातीय विद्रोह और सामाजिक तनाव भले ही कभी-कभी हिंसा का रूप ले लें लेकिन ये मानवीय पहचान और अधिकारों की खोज की अभिव्यक्तियाँ हैं। ये आंदोलन समाज में "जीने" की इच्छा और सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण के लिए सामूहिक संघर्ष का प्रतीक हैं। ऐसे आंदोलनों में लोगों की यह इच्छा होती है कि उनकी विशिष्ट पहचान और उनके आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक अधिकारों को मान्यता दी जाए।

रजनी कोठारी के विचार में, इन आंदोलनों से निपटने का तरीका यह नहीं है कि उन्हें राष्ट्र-विरोधी करार देकर केवल राज्य बल से दबा दिया जाए। इसके बजाय, इन आंदोलनों के पीछे के कारणों और उद्देश्यों को समझना और पहचानना आवश्यक है। इनका उद्भव अक्सर उपेक्षा, असमानता और पहचान की मांगों के प्रति अनदेखी का परिणाम होता है। यदि इन कारणों को ध्यान में नहीं रखा गया, तो वे हिंसक, फासीवादी या कट्टरपंथी रूप धारण कर सकते हैं।

राष्ट्रवादियों का दृष्टिकोण : दूसरी ओर, राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से, क्षेत्रवाद को राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा माना जाता है। उनका तर्क है कि क्षेत्रवाद, यदि अनियंत्रित रूप से बढ़ता है, तो यह देश की अखंडता और एकात्मकता को कमजोर कर सकता है। विशेष रूप से, जब क्षेत्रीय आंदोलन अलगाववादी रुझानों को अपनाते हैं, तो यह देश की संप्रभुता और स्थिरता के लिए गंभीर खतरा बन सकता है। वे मानते हैं कि देश की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए क्षेत्रीय आंदोलनों को सीमित और नियंत्रित करना आवश्यक है।

इन दोनों दृष्टिकोणों का संतुलित परीक्षण यह सुझाता है कि किसी भी क्षेत्रीय आंदोलन को पूरी तरह से दबाने के बजाय, उनके आधारभूत कारणों को समझना और उनका समाधान करना आवश्यक है। क्षेत्रीय पहचान और अधिकारों को मान्यता देकर और उन्हें लोकतांत्रिक प्रक्रिया में शामिल करके, भारत जैसे विविध देश में क्षेत्रवाद और राष्ट्रीय एकता के बीच संतुलन स्थापित किया जा सकता है। यह सही है कि हिंसा और उग्रवाद को रोकने के लिए कानून और व्यवस्था बनाए रखना महत्वपूर्ण है, लेकिन साथ ही क्षेत्रीय मुद्दों का सम्मानजनक समाधान भी आवश्यक है, ताकि वे राष्ट्र के खिलाफ विद्रोह की भावना में परिवर्तित न हों।

इस प्रकार, क्षेत्रवाद को एक वैध लोकतांत्रिक अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, लेकिन इसे ऐसे ढांचे में रखा जाना चाहिए जहाँ यह राष्ट्रीय एकता को नुकसान न पहुंचाए। इसके लिए, समावेशी और संवेदनशील नीतियों की आवश्यकता है, जो क्षेत्रीय असंतोष को दूर करने के साथ-साथ भारत की एकात्मकता को बनाए रखने का काम करें।

इसमें कोई दोराय नहीं हो सकती कि प्रांतीय प्राधिकारियों की स्थापना, कुछ शक्ति के साथ, सरकार और इसकी निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में कहीं अधिक सार्थक व्यक्तिगत भागीदारी प्रदान करती है और मजबूत लोकतंत्र की प्रेरक शक्ति भागीदारी है। यह स्वाभाविक है कि एक लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत व्यक्ति की अपने विशिष्ट हितों की चेतना को राजनीतिक प्रक्रिया के कामकाज में अभिव्यक्ति मिलनी चाहिए। यदि हमें असम में या बंगाल के उत्तर पूर्व में कमजोर करने वाले आंदोलन हुए हैं और हमें तमिलनाडु, नागालैंड, मिजोरम और पंजाब में अलगाववादियों का सामना करना पड़ा है, तो ये घर्षण भारत की लोकतंत्र के प्रति प्रतिबद्धता में अंतर्निहित हैं।

जातीय राष्ट्रवाद एक विश्वव्यापी घटना के रूप में उभरा है और आज कोई भी समाज या राजनीतिक व्यवस्था इसके प्रभाव से अछूती नहीं है। चाहे वह पुराने राष्ट्र-राज्य हों या नए विकसित देश हों या विकासशील, कम्युनिस्ट व्यवस्था हो या पूंजीवादी, जातीय राष्ट्रवाद के दबाव का सामना सभी को करना पड़ रहा है। पश्चिमी यूरोप में क्षेत्रवाद के एक हालिया सर्वेक्षण में 50 सक्रिय क्षेत्रीय आंदोलनों की सूची दी गई है, जबकि एक अन्य विवरण अकेले फ्रांस में 187 से कम जातीय कार्यकर्ता संघों को संदर्भित करता है। यूनाइटेड किंगडम में स्कॉटलैंड और वेल्स में हस्तांतरण (देवॉल्यूशन) का आंदोलन इस बात को दर्शाता है कि यह प्रवृत्ति केवल विकासशील देशों तक सीमित नहीं है। स्कॉटिश और वेल्श राष्ट्रीय पार्टियाँ अधिक स्वायत्तता या कॉमनवेल्थ स्टेटस की मांग कर रही हैं, जो अन्य देशों, जैसे- कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड को प्राप्त है। इसी प्रकार, यू.एस.एस.आर. में भी अत्यधिक केंद्रीकृत शासन के बावजूद, स्वायत्त गणराज्यों और भाषायी विभाजन की वास्तविकता मौजूद थी। कनाडा में क्यूबेक का अलगाववादी आंदोलन लगातार एक चुनौती बना हुआ है, जहाँ भाषायी और सांस्कृतिक मतभेदों के कारण स्वायत्तता और अलगाव की मांगें उठती रही हैं। यह उदाहरण उन समस्याओं को उजागर करता है जो जातीय राष्ट्रवाद के कारण उत्पन्न होती हैं, भले ही वह एक स्थिर और उन्नत लोकतांत्रिक समाज क्यों न हो।

जातीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में, यह समझना महत्वपूर्ण है कि यह केवल नकारात्मक ध्रुवीकरण का कारण नहीं बनता। अक्सर राष्ट्रवादी प्रवृत्तियाँ क्षेत्रवाद को राष्ट्रीय राजनीति के लिए खतरे के रूप में देखती हैं। वे मानते हैं कि यह राष्ट्रीय एकता को कमजोर करता है और विघटनकारी होता है। लेकिन क्षेत्रवाद का एक सकारात्मक पहलू भी है, जिसे अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। क्षेत्रवाद अक्सर अत्यधिक केंद्रीकरण की प्रवृत्ति को रोकने में मदद करता है, जो प्रशासनिक अक्षमता और असंतोष को जन्म दे सकता है। भारत के संदर्भ में, उत्तर-पूर्वी भारत इसका एक उदाहरण है, जहाँ क्षेत्रीय ताकतें शक्तिशाली हैं, लेकिन यह क्षेत्र एकीकृत आर्थिक विकास की ओर बढ़ रहा है। गुवाहाटी इस क्षेत्र का एक प्रमुख केंद्र बन गया है। इसी तरह, प्रशासनिक सुधार आयोग ने एक मजबूत केंद्र का समर्थन किया, लेकिन यह भी स्वीकार किया कि यदि शक्तियाँ दूर के केंद्र में संकेंद्रित होती हैं, तो यह प्रशासनिक अक्षमता और आक्रोश को बढ़ावा देती है, जिससे जनता का विश्वास केंद्र के प्रति कम हो जाता है। जातीय राष्ट्रवाद और क्षेत्रवाद दोनों के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं को समझने के लिए संतुलित दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। क्षेत्रवाद, जब लोकतांत्रिक ढांचे में अच्छी तरह से प्रबंधित किया जाता है, तो यह राष्ट्रीय एकता को खतरे में डालने के बजाय इसे मजबूत कर सकता है। यह स्वायत्तता की मांगों को पहचानकर और उन्हें संबोधित करके केंद्र और राज्य के बीच बेहतर तालमेल स्थापित करने में मदद करता है।

भारत में क्षेत्रवाद को हमेशा एक विघटनकारी शक्ति के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। कांग्रेस नेतृत्व ने अक्सर क्षेत्रवाद की आलोचना की है, लेकिन कई उदाहरण हैं जब क्षेत्रीय ताकतों ने राष्ट्रीय संकट के समय केंद्र के साथ एकजुटता दिखाई है और राष्ट्र

के हितों का समर्थन किया है। तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (DMK) इसका एक प्रमुख उदाहरण है। डीएमके, जो क्षेत्रीय स्वायत्तता के मुद्दों पर सबसे पहले जोर देने वाली पार्टी थी, ने 1962 ई० के चीन के आक्रमण और 1965 ई० और 1971 ई० में पाकिस्तान के साथ युद्ध के दौरान राष्ट्रीय युद्ध प्रयासों का पुरजोर समर्थन किया। यह बताता है कि क्षेत्रीय आशाओं और आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देना स्वाभाविक रूप से राष्ट्र-विरोधी नहीं है। वास्तव में, क्षेत्रीय दल अक्सर अपने राज्यों की सांस्कृतिक, भाषायी और आर्थिक आवश्यकताओं को उजागर करते हैं और यह एक स्वस्थ लोकतांत्रिक प्रक्रिया का हिस्सा है। क्षेत्रीय पहचान को प्रकट करना और स्थानीय भावनाओं का समर्थन करना, अलगाववाद का पर्याय नहीं है।

केंद्र की राजनीति में सत्तारूढ़ दल का यह कर्तव्य है कि वह क्षेत्रीय दलों की वास्तविक शिकायतों पर ध्यान दे और उनके मुद्दों को समझे। जब तक क्षेत्रीय शिकायतों का सही समाधान नहीं होता असंतोष पनप सकता है। अब तक पंजाब के अलावा, किसी भी अन्य राज्य में क्षेत्रवाद ने अलगाववादी रंग नहीं लिया है। पंजाब में भी, ऐसी भावनाएँ एक छोटे अल्पसंख्यक वर्ग तक सीमित रही हैं और व्यापक समर्थन नहीं पा सकी हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्रवाद को एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया का हिस्सा मानते हुए, इसे एक राष्ट्र-विरोधी शक्ति के रूप में देखना अनुचित है। क्षेत्रीय दलों के साथ संवाद और सहयोग से देश की एकता और अखंडता को बनाए रखा जा सकता है, बशर्ते कि उनकी वास्तविक शिकायतों को समझा और समाधान किया जाए।

क्षेत्रीय उभारों के लिए केंद्रीय सत्ता पर हावी होना कठिन है। ऐसी एक से अधिक सीमाएँ हैं जिनके भीतर क्षेत्रवाद को काम करना पड़ता है। ऐसे क्षेत्रीय दल, मतदाताओं से समर्थन मांग रहे हैं, सब्सिडी, शैक्षिक और स्वास्थ्य कार्यक्रमों और गरीबी उन्मूलन योजनाओं के राजनीतिक महत्व को पूरी तरह से महसूस करते हैं। इन योजनाओं, परियोजनाओं या कार्यक्रमों के स्थान और कार्यान्वयन के लिए, उन्हें केंद्र की सद्भावना और वित्तीय सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है, गैर-अनुरूपता के बजाय राष्ट्रीय नीतियों के अनुरूप होना राजनीतिक दलों का अंतिम सहारा है, हालांकि वे केंद्र के अनुचित कदमों का जोरदार विरोध करते हैं। संविधान के तहत अपनी प्रधानता का लाभ उठाना और किसी भी राज्य को उचित सौदे से वंचित करने के लिए अपनी अवशिष्ट शक्तियों का उपयोग करना। क्षेत्रवाद इस हद तक स्वस्थ है कि यह हमारे लोगों के उन वर्गों की सामूहिक इच्छा को व्यक्त करता है जो अपनी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को अधिक मान्यता देना चाहते हैं और महसूस करते हैं कि केंद्र ने खुद को उनसे दूर कर लिया है। रमेश थापर के अनुसार यह क्षेत्रवाद सुधारात्मक है।

क्षेत्रवादियों के इन तर्कों के बावजूद, राष्ट्रवादी उनके रवैये को 'विभाजनकारी, विध्वंसक, प्रवृत्तिवादी और अलगाववादी' कहकर अस्वीकार करते हैं। इस संबंध में उनके मुख्य तर्क इस प्रकार हैं:

- क्षेत्रीय दल या समूह, जो एक सीमित भौगोलिक क्षेत्र के भीतर काम करते हैं या जो आदिम वफादारी का प्रतिनिधित्व करते हैं, उनके संकीर्ण रूप से परिभाषित हित हैं और उनके ये हित आम तौर पर राष्ट्र की व्यापक और विविध चिंताओं के बिल्कुल विपरीत हैं। चूंकि क्षेत्रीय संगठन विशेष रूप से अपने स्वार्थ के लिए काम करते हैं इसलिए वे समग्र रूप से लोगों की जरूरतों और समस्याओं को नजरअंदाज कर देते हैं। जाहिर तौर पर यह अलोकतांत्रिक है।
- यह तर्क देने का पर्याप्त आधार है कि क्षेत्रीय ताकतें देश की एकता और अखंडता को खतरे में डालती हैं। यह पंजाब का क्षेत्रवाद है, जो धार्मिक कट्टरता से मिश्रित है और आतंकवाद का सहारा लेने वाले चरमपंथियों द्वारा समर्थित है, जो पिछले लगभग पांच दशकों से शासन को परेशान कर रहा है। पंजाब में अशांत स्थिति को अस्थिर करने के लिए विदेशी हस्तक्षेप ने समस्या को और अधिक जटिल बना दिया है। असम में संकट ने राजनीति में जातीय पहचान की विस्फोटक क्षमता को काफी हद तक प्रदर्शित किया है; पश्चिम-बंगाल के दार्जिलिंग जिले में गोरखालैंड आंदोलन ने भी इसी तरह के संकेत और सबक दिए।
- अतीत में, भारत के राष्ट्रीय नेता और "राष्ट्र-निर्माण" के सिद्धांतों से जुड़े विद्वान धार्मिक और जातीय अल्पसंख्यकों को मामूली अड़चन के रूप में देखते थे। उन्हें उम्मीद थी कि आधुनिकीकरण की चल रही प्रक्रिया के साथ, ये परेशानियाँ अपने आप दूर हो जाएँगी। उनकी इस धारणा को बार-बार अस्वीकृत किया गया है। धार्मिक, भाषायी और सांस्कृतिक पहचान राष्ट्रीय पहचान में विकसित नहीं हो पाई है।
- भारत को अशिक्षा, गरीबी और आर्थिक विकास की अपनी बुनियादी समस्याओं पर काबू पाने के लिए एक सामूहिक राष्ट्रीय इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। राष्ट्रीय अभिजात्य वर्ग का विखंडन इन राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक साबित नहीं हुआ, यह साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत हैं।
- नेहरू के युग में भी क्षेत्रीय अभिजात वर्ग द्वारा क्षेत्रीय हितों को राष्ट्रीय हितों पर प्रधानता दी गई थी। चाहे भूमि सुधार पर हो या अस्पृश्यता उन्मूलन की आवश्यकता पर या अल्पसंख्यकों के साथ उचित व्यवहार पर, राज्य मंत्रालय सी.एफ.आर.-सी.एन. अपने तरीके से चले, हालांकि यह राष्ट्रीय हित में नहीं था।
- प्रवासी विरोधी राजनीतिक आंदोलनों (जो असम, आंध्र प्रदेश, बिहार और और बेंगलुरु शहरों में सक्रिय हैं) का औचित्य जो भी हो, उनका दृष्टिकोण संकीर्ण है और उनका कार्यक्रम सीमित है। उनका लक्ष्य समग्र विकास प्रक्रिया को ध्यान में रखे बिना नये विकास के अवसरों का अधिकतम विनियोग करना है। इतना ही नहीं, वे क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, क्षेत्रीय अभिजात वर्ग और राष्ट्रीय अभिजात वर्ग, क्षेत्रीय हित और राष्ट्रीय हित के बीच संघर्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं।

क्षेत्रवाद और राष्ट्रवाद के बीच संघर्ष के क्षेत्र

क्षेत्रवाद और राष्ट्रवाद के बीच मौजूदा संघर्ष छह प्रमुख क्षेत्रों में परिलक्षित होता है- शैक्षिक नीति, संसाधन आवंटन, योजना, भाषा नीति, चुनावी प्रतिस्पर्धा, और जन मीडिया नियंत्रण। इन क्षेत्रों में संघर्ष न केवल क्षेत्रीय दलों और केंद्र सरकार के बीच सत्ता के वितरण पर केंद्रित है बल्कि यह राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र-निर्माण के दृष्टिकोण पर भी सवाल खड़ा करता है।

शैक्षिक नीति: शैक्षिक नीति में, राज्य सरकारें अपने क्षेत्रों में शिक्षा के अधिकतम नियंत्रण का उपयोग करती हैं, जिसके

कारण शैक्षिक प्रणाली का स्थानीयकरण होता है। पाठ्य-पुस्तकें और पाठ्यक्रम अक्सर स्थानीय संस्कृति, भाषा और इतिहास पर जोर देते हैं, जो क्षेत्रीय निष्ठाओं को बढ़ावा देते हैं। यह प्रवृत्ति राष्ट्रीय पहचान के बजाय क्षेत्रीय पहचान को मजबूत करती है, जिससे राष्ट्रीय एकता प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, कुछ राज्यों में राष्ट्रगान को लेकर विरोध या उसके स्थान पर कोई स्थानीय गीत अपनाना राष्ट्रवादी भावना को चुनौती देता है। हालांकि, राज्य सरकारें अक्सर ऐसे मुद्दों पर कार्यवाही करने से कतराती हैं, क्योंकि चुनावी राजनीति में क्षेत्रीय भावनाएँ अधिक प्रभावशाली हो सकती हैं।

संसाधनों का आवंटन: राज्यों को संघ से मिलने वाले राजस्व में असंतोष बना रहता है। हालांकि वित्त आयोग ने राज्यों के प्रति व्यवहार्य हस्तांतरण का समर्थन किया है फिर भी राजस्व हस्तांतरण राज्यों की जरूरतों को पूरा करने में अपर्याप्त साबित हुआ है। संघ सरकार द्वारा राज्यों के कराधान क्षेत्रों को नियंत्रित करने से राज्यों में नाराजगी बढ़ी है। सरकारिया आयोग ने केंद्र से आयकर, निगम-कर और उत्पाद शुल्क जैसे प्रमुख राजस्व स्रोतों में राज्यों की हिस्सेदारी बढ़ाने की सिफारिश की है, ताकि राज्य अपने विकास और आवश्यकताओं को बेहतर ढंग से पूरा कर सकें।

योजना: केंद्रीय योजना का अत्यधिक केंद्रीकरण भी राज्यों के असंतोष का एक प्रमुख कारण है। राज्यों का कहना है कि केंद्र उनके विकास की योजनाओं में बहुत हस्तक्षेप करता है, जिससे उनकी स्वायत्तता और स्वतंत्रता सीमित हो जाती है। दशकों के अनुभव के बाद, राज्य इस बात की उम्मीद कर रहे हैं कि केंद्र उन्हें अपनी विकास योजनाओं के निर्माण में अधिक स्वतंत्रता देगा, जिससे उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं और संसाधनों के अनुसार विकास हो सके।

भाषा नीति: भाषा नीति के मामले में भी संघर्ष देखने को मिलता है, जहाँ हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में बढ़ावा दिया जाता है, जबकि दक्षिण भारत और अन्य गैर-हिंदी भाषी राज्यों में स्थानीय भाषाओं पर अधिक जोर दिया जाता है। यह भाषा संघर्ष अक्सर क्षेत्रीय और राष्ट्रीय पहचान के बीच विभाजन को और गहरा करता है।

चुनावी प्रतिस्पर्धा: चुनावी प्रतिस्पर्धा में, क्षेत्रीय दल अक्सर स्थानीय मुद्दों और पहचान पर जोर देते हैं, जिससे वे केंद्र के खिलाफ खुद को स्थापित कर सकते हैं। यह संघर्ष क्षेत्रीय दलों को राष्ट्रीय नीतियों के साथ असहमति दिखाने का अवसर देता है, जिससे राजनीतिक ध्रुवीकरण बढ़ता है।

जन मीडिया पर नियंत्रण: जन मीडिया पर नियंत्रण एक और संघर्ष का क्षेत्र है, जहाँ केंद्र और राज्य दोनों ही अपने-अपने हितों के अनुसार जनमानस को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। क्षेत्रीय मीडिया अक्सर केंद्र की नीतियों की आलोचना करता है, जबकि राष्ट्रीय मीडिया क्षेत्रीय दलों के प्रयासों को विघटनकारी बताता है। इससे जनमत का ध्रुवीकरण होता है, जो राष्ट्रीय एकता को कमजोर कर सकता है।

निष्कर्ष

क्षेत्रवाद और राष्ट्रवाद के बीच संतुलन बनाना न केवल राजनीतिक स्थिरता के लिए आवश्यक है, बल्कि यह एक समृद्ध और समावेशी समाज की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम है। केंद्र और राज्यों के बीच संवाद और सहयोग को बढ़ावा देना, क्षेत्रीय आकांक्षाओं को समझना और राष्ट्रीय नीतियों को अधिक समावेशी बनाना आवश्यक है।

इस प्रकार, एक ऐसा ढांचा विकसित करना चाहिए जिसमें क्षेत्रीय पहचान और राष्ट्रीय एकता का सामंजस्य हो। इससे ना केवल लोकतांत्रिक प्रक्रियाएँ मजबूत होंगी, बल्कि एक समृद्ध भारत की दिशा में भी ठोस कदम बढ़ाए जाएंगे।

संदर्भ

1. अरोड़ा, रमेश के. (संपा.). (1975). एडमिनिस्ट्रेटिव चेंज इन इंडिया. दिल्ली: आलेख पब्लिशर्स।
2. बॉम्बवाल, के.आर. (1967). द फॉर्मेशन्स ऑफ इंडियन फेडरलिज़्म. बॉम्बे: एशिया पब्लिशिंग हाउस।
3. गुप्ता, डी.सी. (1973). इंडियन गवर्मेंट एंड पॉलिटिक्स. नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.
4. नरैन, इक़बाल. (1967). स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया. मेरठ: मीनाक्षी प्रकाशन।
5. मुखोपाध्याय, अनिल कुमार (संपा.). (1974). सोसाइटी एंड पॉलिटिक्स इन कंटेम्परेरी इंडिया. कोलकाता: काउंसिल फ़ॉर पॉलिटिकल स्टडीज़।
6. राव, सुब्बा के. (1970). कॉन्फ्लिक्ट इन इंडियन पॉलिटी. नई दिल्ली: एस. चाँद एंड कम्पनी।
7. रेड्डी, ए. आर. (n.d.). इंडियन कॉन्स्टिट्यूशन एंड डेवलपमेंट. नई दिल्ली: स्टूडेंट्स हेल्पलाइन पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.